'भ्रमरगीत' में प्रकृति–चित्रण

डॉ. सविता
हिन्दी विभाग
माता सुन्दरी कॉलिज, दिल्ली

सारांशिका

आदिकाल से ही मानव को प्रकृति प्रेम रहा है जिसके कारण पर वह पग–पग पर प्रकृति से अछूता नहीं है। प्रकृति मानव का बराबर पोषण करते हुए उसका मार्ग प्रशस्त करती है। आदिकाल से ही प्रकृति मानव की सहचरी है। मानव आजीवन इसी के प्रांगण में रहता है। यही कारण है कि प्रकृति काव्य–सृजन की महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति रही है। हीगेल का 'सौन्दर्य प्रेम', हडसन का 'यथार्थ जगत् के प्रति आकर्षण–भाव और लगाव' तथा रुद्राचार्य की 'उत्पाद्या और प्रेरक प्रेरणाएँ' इसी सत्य की परिचायक हैं। यही कारण है कि प्रत्येक देश–काल के काव्य शास्त्रों में प्रकृति और काव्य का जन्मना सम्बन्ध माना गया है तथा प्रत्येक कवि ने किसी न किसी रूप मात्रा में प्रकृति–चित्रण को अपने काव्य का अंग बनाया है। प्रकृति के हयवघ में डॉ. रघुवंश स्पष्ट कहते हैं कि–इस धरातल पर मन से और उसको धारण करने वाले शरीर (प्राणी समूह) को छोड़ अन्य समस्त सचेतन और अचेतन सृष्टि प्रकार को ही प्रकृति कहा है।''

मुख्य शब्द : प्रकृति प्रेम, सूरसागर, श्री कृष्ण, गोपियाँ।

प्रस्तावना

आदिकाल से ही मानव को प्रकृति प्रेम रहा है जिसके कारण पर वह पग–पग पर प्रकृति से अछूता नहीं है। प्रकृति मानव का बराबर पोषण करते हुए उसका मार्ग प्रशस्त करती है। आदिकाल से ही प्रकृति मानव की सहचरी है। मानव आजीवन इसी के प्रांगण में रहता है। यही कारण है कि प्रकृति काव्य–सृजन की महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति रही है। हीगेल का 'सौन्दर्य प्रेम', हडसन का 'यथार्थ जगत् के प्रति आकर्षण–भाव और लगाव' तथा रुद्राचार्य की 'उत्पाद्या और प्रेरक प्रेरणाएँ' इसी सत्य की परिचायक हैं। यही कारण है कि प्रत्येक देश–काल के काव्य शास्त्रों में प्रकृति और काव्य का जन्मना सम्बन्ध माना गया है तथा प्रत्येक कवि ने किसी न किसी रूप मात्रा में प्रकृति–चित्रण को अपने काव्य का अंग बनाया है। प्रकृति के हयवघ में डॉ. रघुवंश स्पष्ट कहते हैं कि–इस धरातल पर मन से और उसको धारण करने वाले शरीर (प्राणी समूह) को छोड़ अन्य समस्त सचेतन और अचेतन सृष्टि प्रकार को ही प्रकृति कहा है।''

वस्तुत सूरदास प्रकृति प्रिय कवि हैं। इसलिए इन्होंने सम्पूर्ण काव्य में प्रकृति का चित्रण विपुल मात्रा में और विविध रुपों में प्रस्तुत किया है। वास्तव में सूर–काव्य का प्रधान घटना स्थल है–वृन्दावन जो नाना प्राकृतिक सौन्दर्यों से परिपूर्ण हैं। यहाँ पर कवि की क्रीड़ा–स्थली भी देखने को मिलती है। सूरदास जीवन का अधिकांश समय वृन्दावन की गोद में व्यतीत हुआ। तीसरे, सूर के काव्य और दीक्षा–गुरु श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा निर्मित श्रीनाथ मन्दिर वृन्दावन भूमि–स्थल पर था जहाँ कवि सूरदास ने अपने समस्त काव्य का सृजन किया है। इस भूमि का साम्प्रदायिक–धार्मिक महत्व भी अधिक है। यह कृष्ण–भक्त हिन्दुओं की पवित्र तीर्थ स्थली है। इसके सम्बन्ध में **डॉ. पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'** (सूरदास) ने कहा है, ''पुष्टि मार्ग में दार्शनिक दृष्टि से जो महत्व गोलोक को दिया गया है, वही उसके छाया रूप कृष्ण के लीला धाम वृन्दावन को भी दिया गया है।'' पुष्टि मार्गीय कृष्ण–भक्त सूर को भी ब्रज–भूमि से विशेष प्रेम है, जैसा कि ''धनि यह वृन्दावन की रेनु'' कहकर स्वयं सूरदास ने स्वीकार भी किया है। इन सभी कारणों से सूरदास का अपने काव्य में प्रकृति का चित्रण करना स्वाभाविक एवं अनिवार्य रुप से दिखलाई पड़ता है। इस सत्यता के सम्बन्ध में **डॉ. राम रतन भटनागर** ('सूर–साहित्य की भूमिका') ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, ''कृष्ण का विकास जैसे ब्रज की प्रकृति में होता है उसी प्रकार सूर–साहित्य का विकास भी ब्रज–प्रकृति की छाया में ही होता है। ब्रज की प्रकृति ने उन्हें केवल उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के लिए ही सामग्री नहीं दी है, वह उनके काव्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित हुई है।'' सर्वाधिक सशक्त प्रमाण है भ्रमरगीत के प्रकृति–चित्रण विभिन्न तरह की विशेषताएँ देखने को मिलती है।

महाकवि सूरदास के 'भ्रमरगीत' 'सूरसागर' का एक महत्वपूर्ण एवं विशेषताओं से युक्त और प्रतिनिधि अंश है। इसका घटना स्थल है तथा सम्पूर्ण मण्डल क्षेत्र है ब्रज। इसमें प्रमुख चरित्र हैं–गोपियाँ एवं कृष्ण जो वहीं जन्मे, पले और बड़े हुए हैं। इन्हीं के माध्यम से कवि ने ब्रज प्रदेश–विशेषतः वृन्दावन की प्रकृति के विभिन्न भाँति के रुप को चित्रित किया है। इसके अन्तर्गत प्रकृति के नाना पदार्थ यथा चन्द्र, सूर्य, वन–उपवन, नदी, वर्षा आदि ऋतुएँ, मेघ, पशु–पक्षी आदि न जाने कितने अंग अंकित हैं। इस प्रकृति–चित्रण की विशेषताओं के कारण ही ''भगवान कृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन (कृष्ण प्रेमी) कवियों को आकर्षित कर पाया है।''

उद्दीपन–प्रधानताः 'भ्रमरगीत' सूरदास का श्रृंगारान्तर्गत विप्रलम्भ प्रधान काव्य है। इसलिए इनके काव्य में प्रकृति मुख्यतः विरह भाव को उद्दीप्त करने वाले रुप में ही देखने को मिलती है। **डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा** ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहते है कि ''प्रायः भावों के उद्दीपन के लिए कवि ने यथावसर सुन्दर प्राकृतिक वातावरण उपस्थित करके मानवेतर सौन्दर्य निरीक्षण का परिचय दिया है।'' यहाँ इस भूमि में संयोग काल में नायक–नायिका को प्रकृति के जो दृश्यादि सुख देते हैं, वह विरह काल में वे ही बड़े कष्ट दायक प्रतीत होने लगते हैं। यही कारण है कि 'भ्रमरगीत' की विरहिणी गोपियों को भी प्रकृति के अनेक उपादान दुःखदाता दिखलाई पड़ते हैं। इसमें प्रमाण स्वरुप कुछ उदाहण देखे जा सकते हैं जिनमें प्रकृति–उपादान इसी उद्दीपन रूप में चित्रित हो रहे हैं। देखिए :–

(1) बिनु गोपाल बैरिनी भईं कुंजै।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भंईं विशम ज्वाल की पुंजै।।

वृथा बहति जमुना खग बोलत, वृथा कमल फूलै अति गुंजै।।

पवन पानि घनसार संजीवनि दधिसुत किरन भानु भंईं भुंजै।।

शरद् ऋतु :

(2) ''ऊधो! सरद समयहू आयो।

बहुतै दिवस रटत चातक तकि तेउ स्वाति–जल पायो।।''

गोपियों की ही नहीं बालक विरह दशा में पशु पक्षी भी शत्रुता में दिखलाई पड़ रहे हैं और मानों बादल भी घनघोर आवाज शत्रु की भाँति कर रहे हैं :–

पक्षी–(3) पारे भाई! मोरउ बैर परे।

घन गरजे बरजे नहिं मानत त्यों त्यों रटत खरे।।''

चन्द्र–(4) कोउ माई! बरजै या चंदहि।

करत है कोप बहुत हम ऊपर, कुमुदहि करत अनंदहि।।

इसी तरह वर्षा को देखिए जिसकी स्थिति भी प्रकृति के सौन्दर्य को प्रकट कर रही है किन्तु वरिह में वह शीतलता एवं आनन्द देने के अलावा विरह अग्नि में झुलसा रही हैः–

वर्षा–दृश्य :–

''बरन बरन अनेक जलधर अति मनोहर वेष।

यहि समय यह गगन–सोभा, सबन तें सुविशेष।।

उड़त बक, सुक वृन्द राजत, रटत चातक मोर।

बहुत भाँति चित हित–रुचि बाढ़त दामिनी घनघोर।।''

स्वयं प्रकृति भी कृष्ण–विरह में व्यथित होती दिखलाई दे रही है। वास्तव में यह है कि, ''जिस दिन से कृष्ण गये हैं उस दिन से मोरों ने वर्षा ऋतु तक में बोलना छोड़ दिया, मृग वंशी–ध्वनि नहीं सुनते और वृन्दावन हरा भरा नहीं दिखलाई पड़ रहा है। यही नहीं, यमुना शावली पड़ गयी है। यही स्थिति पशु–पक्षियों की है। वह भी विरह में पीड़ित हो रहे हैं। गाय भी पीड़ित हो रही है–

''ऊधो! इती कहियो जाय।

अति कृसगात भंईं हैं तुम बिन परम दुधारी गाय।

जल समूह बरसत अंखियन तें हूंकत लीने नांव।

परति पछार खाय तेहि तेहि थल अति व्याकुल व्है दीन।''

शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो यह प्रकृति चित्रण उद्दीपक वर्ग का है, जबकि वास्तव में यह कवि–आत्मा का प्रतिबिम्ब रुप दिखलाई पड़ता है।

सूरदास ने **मानवीकरण** उद्दीपक प्रकृति के अन्तर्गत कहीं–कहीं कवि ने निर्जीव प्रकृति को भी सजीव बनाकर प्रदर्शित किया है। ऐसी झाँकी यमुना नदी की देखिए जो कवि ने बड़ी ही सटीकता के साथ प्रस्तुत की है–

''देखियत कालिंदी अति कारी।...

कहियो, पथिक! जाय हरि सों ज्यों भंईं विरह–जुर–जारी।।

मनो पलिका पै परी धरित धंसि तरंग तलफ तनु भारी।

तटबारु उपचार चूर मनो, स्वेद–प्रवाह पनारी।।

बिगलित कच कुस कास पुलिन मनो, पंकज कज्जल सारी।''

कवि सूरदास ने संयोग–काल में प्रकृति का चित्रण आलंकारिक रूप में रूप–सौन्दर्य के अन्तर्गत किया है। इसलिए उसी भाँति वियोग काल में प्रकृति का आलंकारिक वर्णन विरह–व्यथा को प्रदर्शित करने वाले द्रव्यों में अंकित किया है। इसकी मौलिकता यह है कि यह प्रकृति–चित्रण एकदम रोगोत्प्रेरक, भावानुकूल तथा प्रभावोत्पादक है बल्कि उक्ति का चमत्कार नहीं। इसलिए सूरदास ने ऐसे अनेक दृव्य प्रस्तुत किए हैं जिनकी झाँकी देखी जा सकती है–

(1) ''तुम्हरे विरह, ब्रजनाथ अंहो प्रिय! नयनन–नदी बढ़ी।

लीने जात निमेष कूल दोउ एते मान चढ़ी।।

गोलक नव–नौका न सकत चलि त्यों सरकनि बढ़ि बोरती।

ऊरध स्वास समीर तरंगन तेज तिलक–तरु तोरति।''

यहाँ पर सांगरुपक अलंका की छटा है।

(2) ''देखो माई ! नयनन्ह सों घन हारे।

बिन ही ऋतु बरसत निसि बासर सदा सजल दोउ तारे।''

यहाँ पर वर्षा ऋतु का रूपक है। इस ओर डॉ. मुन्शी राम शर्मा (सूर सौरभ) ने कहा है कि, ''प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में वे अलंकारों का प्रयोग अवश्य करते हैं पर उन अलंकारों में दृश्यों के रूप, गुरण, क्रिया आदि का उत्कर्ष ही सिद्ध होता है। 'भ्रमरगीत' में प्रकृति–स्थल सीमित है और एक (वृन्दावन) ही है। फिर भी कवि सूर ने उसके वर्णय–विषयों, रूपों, उपादानों में विभिन्नता को गहन करके उसको व्यापक बना दिया है। इसलिए ब्रजभूमि में यहाँ पर पशु–पक्षी (गाय, पपीहा, मोर, मधुकर, दादुर आदि), वनस्पति, कमल, वन, उपवन, स्थान, यमुना, पनघट, कुंज–समूह, तत्व, सूर्य, चन्द्र, मेघ, ऋतु, शरद, वर्षा, समय,प्रातः, रात्रि, गोधूलि आदि का व्यापक चित्रण किया है। इसके साथ ही कवि प्रकृति के शान्त और भयंकर दोनों रूप यहाँ पर चित्रित किये हैं जिसमें इस रुप शान्त दिखलाई पड़ता है और दूसरी ओर भयंकर रूप भी दिखलाई देता है–

''उड़त बक सुक वृन्द राजत, रटत चातक मोर।

बहुत भाँति चित हित रुचि बाढ़त दामिनी घनघोर।।''

''बासर–रैन सधूम भयानक दिसि दिस तिमिर मठ्यो।

दुंद करत अति पबल होत पुर, पय सो अनल डठ्यो।''

कवि सूरदास ने भ्रमर गीत में प्रकृति को विपुल और विविध रूपों में चित्रित किया है। इसलिए इसको केवल शास्त्रीय प्रकारों से देखना ठीक नहीं है। अतः **डॉ. कमलेश** ने भी ठीक कहा है, ''सूर का प्रकृति वर्णन हमारे ग्राम्य जीवन की नाना–छवियों को लिये हुये हैं और उसमें हमारा तत्कालीन जन–जीवन मुखरित हो उठा है।'' ''प्रकृति का ऐसा शुद्ध वर्णन अन्य कवियों की रचनाओं में देखने को उपलब्ध नहीं होता है।'' कवि सूरदास का यह प्रकृति चित्रण अपने में विशिष्ट, मौलिक, भावप्रद और रागोत्प्रेरक है जिसके कारण तन्मयता और तल्लीनता इनके काव्यात्मक गुण को लिए हुए विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- डॉ. रघुवंश – प्रकृति और हिन्दी काव्य – पृ. सं. 76
- डॉ. सुरेश चन्द निर्मल – सूर और उनका काव्य–पृ. सं. 66
- डॉ. राम रतन भटनागर – सूर साहित्य की भूमिका–पृ. सं. 10
- डॉ. शशि कुमार – हिन्दी भाषा और साहित्य – पृ सं. 21
- डॉ. शशि कुमार – हिन्दी भाषा और साहित्य – पृ सं. 21